साहित्य के नये सौंदर्यशास्त्र

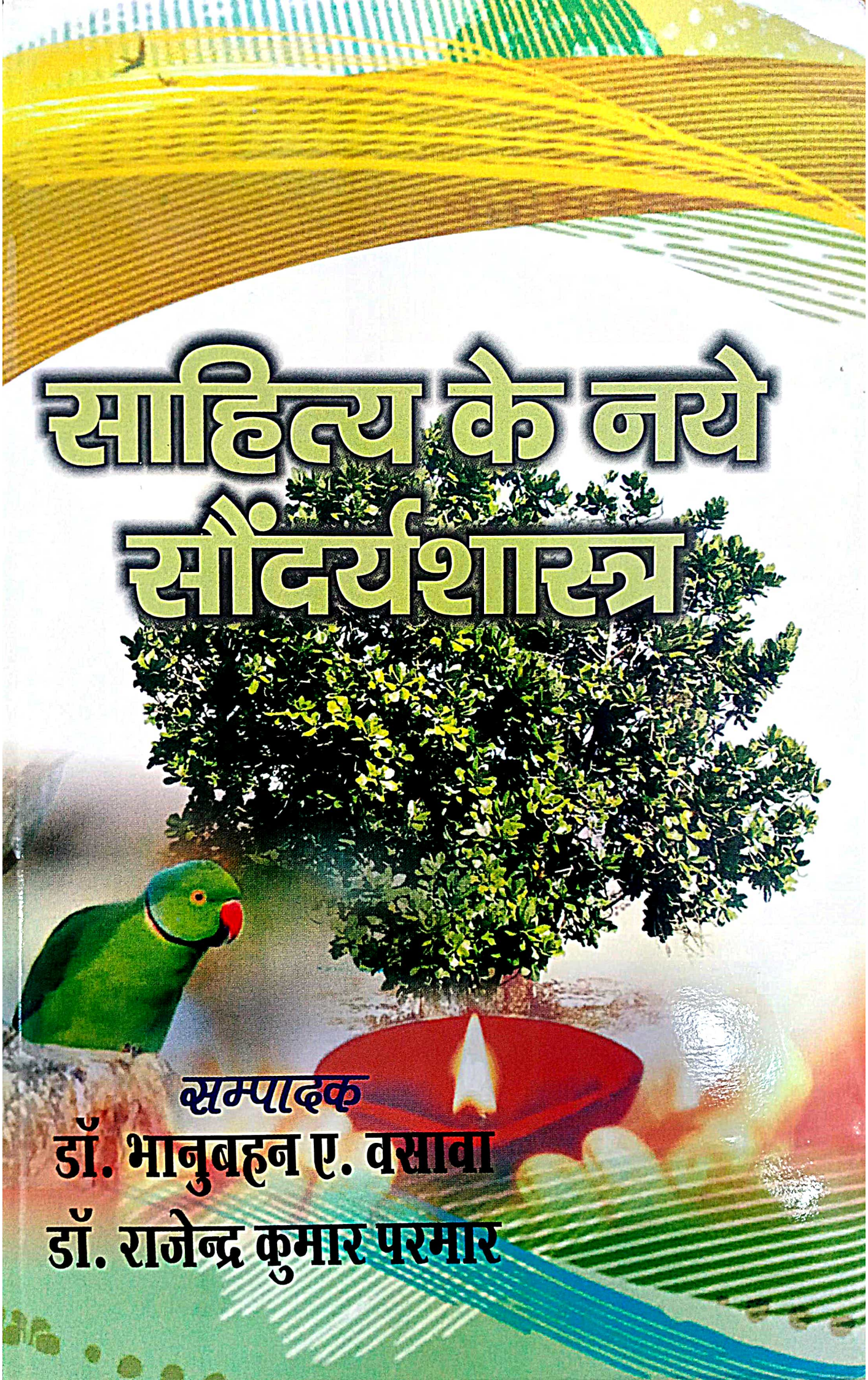

सम्पादक

डॉ. भानुबहन ए. वसावा

डॉ. राजेन्द्र कुमार परमार

I.S.B.N. : 978-81-942197-2-9

पुस्तक : साहित्य के नये सौंदर्यशास्त्र

संपादक : डॉ. भानुबहन ए. वसावा, डॉ. राजेन्द्र कुमार परमार

प्रकाशक : ज्ञान प्रकाशन
7/202, एल.आई.जी. आवास विकास,
हंसपुरम, नौबस्ता, कानपुर-208 021 (उ.प्र.)
08004516501, 08299329709 (Mob.)
Email : gyanprakashankanpur@gmail.com

संस्करण : सन् 2019

सर्वाधिकार : संपादकाधीन

मूल्य : ₹ 1050/- मात्र

शब्द-सज्जा : च्वाइस कंप्यूटर ग्राफिक्स, कानपुर

मुद्रक : पूजा ऑफसेट, कानपुर-12

Sahitya Ke Naye Saundaryashastra

Edited by Dr. Bhanubahan A. Vasava
Dr. Rajendrakumar Parmar

Price : Rupees One Thousand Fifty Only

अनुक्रम

✧ भूमिका : साहित्य के नए सौंदर्यशास्त्रों की पहचान 5-8
प्रो. डॉ. रंजना अरगडे

✧ बीज वक्तव्य : नये काव्यशास्त्र/सौंदर्यशास्त्र की आवश्यकता और नये कवि 9-26
दिविक रमेश

छायावादी सौंदर्यशास्त्र

1. साहित्य का नया सौंदर्यशास्त्र 31-35
डॉ. शिव प्रसाद शुक्ल

2. छायावादी सौंदर्यशास्त्र 36-39
मित्तल एच. शाह

3. छायावादी सौन्दर्यशास्त्र/काव्य सौन्दर्य और निराला की काव्यदृष्टि 40-52
आरती सिंह क्षत्रिय

4. जयशंकर प्रसाद के काव्य का सौन्दर्यशास्त्र 53-57
अलका सोंदरवा

5. छायावादी सौन्दर्यशास्त्र 58-63
भावना बहन मगनभाई परमार

प्रगतिवादी सौंदर्यशास्त्र

6. हिन्दी उपन्यासों में प्रगतिवादी सौन्दर्य 64-75
डॉ. भानुबहन ए. वसावा

7. लोक सौन्दर्य को शास्त्र में बाँधता प्रगतिवादी सौन्दर्यशास्त्र 76-80
डॉ. राजेन्द्र परमार

8. हम भी शामिल हैं समीक्षाई में 81-84
अनूपा चौहान

9. मुक्तिबोध के काव्य में फैंटेसी 85-87
डॉ. दीपक सोंदरवा

10. सौन्दर्यशास्त्र : कसौटी पर 88-91
अनिल कुमार पाण्डेय

11. 'आपका बंटी' उपन्यास में बाल मनोविज्ञान 92-95
सौरभ ब्रह्मभट्ट

7

लोक सौंदर्य को शास्त्र में बाँधता-प्रगतिवादी सौंदर्यशास्त्र

✍ डॉ. राजेन्द्र परमार

किसी भी युग के साहित्य का अपना एक विशिष्ट सौंदर्यशास्त्र होता है। जिसके माध्यम से हम किसी भी भाषा के साहित्य का मूल्यांकन कर सकते हैं। सौंदर्यशास्त्र रचना और रचनाकार में प्रवेश करने की वह चाभी है, जिससे साहित्य के सौंदर्य को देखा, परखा और उद्घाटित किया जा सकता है। युगानुरूप साहित्य में परिवर्तन होता है, तो उसके सौंदर्यशास्त्र में भी परिवर्तन होता है। साहित्य की कसौटी युगीन तत्वों को दरकिनार करके नहीं की जा सकती, क्योंकि किसी भी युग का साहित्य तत्कालीन युग से प्रभावित होता है। हिन्दी के भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिककाल की कविता का अपना अलग सौंदर्यशास्त्र है। आधुनिककाल में भी विभिन्न युगों में लिखी जाने वाली हिन्दी कविता का भी अपना भिन्न-भिन्न सौंदर्यशास्त्र है। प्रगतिवादी कविता का भी अपना अलग सौंदर्यशास्त्र है। प्रगतिवादी कवियों ने सौंदर्य को नये दृष्टिकोण से देखा है तथा जनजीवन के सौंदर्य में उनकी दृष्टि अधिक रमी है। उन्होंने सौंदर्य की सत्ता प्रकृति में भी मानी है और मनुष्य के मन में भी। उनकी दृष्टि में सौंदर्य की अनुभूति व्यक्तिगत भी होती है और समाजगत भी। प्रगतिवादी कवियों ने सौंदर्य को काल्पनिक न मानकर जीवन और धरती के ठोस धरातल पर स्थित करके नये ढ़ंग से विचार किया है। प्रगतिवाद का मूल आधार तो मार्क्सवाद ही है, पर उसकी जमीन भारतीय परिवेश की है। जिसने पूर्ववर्ती समस्त साहित्यिक परम्परा को विरासत के रूप में ग्रहण करते हुए प्रवेश किया।[1] प्रमुख प्रगतिवादी कवियों में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, रामविलास शर्मा, रांगेय राघव, मुक्तिबोध, शिवमंगलसिंह सुमन, आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्होंने प्रतिबद्ध कविता की बुनियाद पर नये सौंदर्यशास्त्र की जमीन तैयार की है।

हिन्दी कविता के क्षेत्र में प्रगतिवाद का आरंभ हम भले ही 1936 से मानते हैं, किन्तु उसकी पृष्ठभूमि तो छायावाद काल से तैयार हो गई थी। इस संदर्भ में छायावाद के सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और सुमित्रानंदन पंत की परवर्ती कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। युग के नये यथार्थ के संदर्भ में प्राचीन संस्कारों के मोहपाश को झटकते हुए नई काव्य-चेतना का स्वागत करने वालों में प्रथम छायावादी कवि पंत थे। उन्होंने एक ओर प्राचीन सामन्ती रूढ़ियों और मान्यताओं को ठुकराया, दूसरी ओर समाज जीवन की

दशा का चित्र अंकित करने की चेष्टा की है। प्रगतिवादी कवि की दृष्टि आकाश में ताकने के स्थान पर धरती की रंग-बिरंगी शोभा, शक्ति और स्वर को निरखने लगी। आकाश में ताकने वाले लोगों से कवि कहता है -

'ताक रहे हो गगन? मृत्यु नीलिमा गहन
निस्पंद शून्य, निर्जन, नि:स्वन
देखो भू को, स्वर्गिक भू को।
मानव पुष्प प्रसू को।'[12]

पंत के बाद निराला ने 'कुकुरमुत्ता', 'खजोहरा', 'गर्म पकौड़ी', 'महँगु महँगा रहा' आदि व्यंग्यपरक प्रगतिवादी कविताएँ लिखी। इन कविताओं में कहीं छोटे व्यक्ति का दंभ लक्षित होता है, कहीं सामान्य जनों के प्रति करूणा दिखाई पड़ती है। निराला ने सहज ही समाज के कुछ दीन-हीन, पीड़ित लोगों को कविता का विषय बनाया। 'भिक्षुक', 'वह तोड़ती पत्थर', 'विधवा' आदि कविताएँ इस बात का प्रमाण है।

प्रगतिवादी कविता में राष्ट्रीयता तथा देश- प्रेम की प्रशस्त तथा सहज अभिव्यक्ति हुई है। यह अभिव्यक्ति कई रूपों में, कई स्तरों पर हुई हैं। यदि एक ओर प्रगतिवादी कवि ने देश की आजादी के लिए शहीद हो जाने वाले वीरों को श्रद्धा-सुमन अर्पित किए तो दूसरी ओर शोषण का भोग बनने वाले सर्वहारा वर्ग के मार्मिक चित्र भी अंकित किए हैं। अपने देश की धरती तथा जनता के प्रति प्रगतिवादी कवि की आस्था तथा प्रेम उसकी राष्ट्रीयता की पहचान है। उसे धरती माता की स्तुति मात्र से संतोष नहीं, वह उसके लिए कठोर श्रम की मांग करता है -

'सर्वसहनशीला, अन्नपूर्णा, वसुन्धरा,
स्तुति नहीं, श्रम, कठोर श्रम मांगती धरती...'[13]

धरती के प्रति प्रगतिवादी कवि का यह प्रेम केवल अंचल तक ही सीमित नहीं है, यह प्रेम समूचे देश और धरती मात्र के प्रति है। केदारनाथ, त्रिलोचन तथा डॉ. रामविलास शर्मा की कविताएँ भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। अपनी धरती के सौंदर्य तथा सुषमा का अंकन करते हुए किसानों, चमारों के शोषण, दु:ख, दर्दों को नहीं भूले। उनकी कविताओं में ग्रामीण जीवन के दु:ख, दीनता वाले चित्रों में मजदूर और किसानों के प्रति सहानुभूति के स्वर मिलते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा ने सीला बनने वाले श्रमिकों का यथार्थ चित्रण किया है -

'फटे अंगोछों में, बच्चे भी साथ ले
ध्यान लगा जूनीला चमार है बीनते
खेत कटाई की मजदूरी, इन्होंने
जोता बोया सींचा भी था खेत को।'[14]

सारे दिन बेगार करने वाले को यदि पारिश्रमिक 'सीला' ही मिले तो इससे अधिक

दयनीय स्थिति ओर क्या हो सकती है?

इस प्रकार प्रगतिवादी कवियों में राष्ट्रीयता तथा देश-प्रेम का जो ठोस, जीवित तथा उदात्त स्वरूप दिखाई पड़ता है, वह उनकी विशिष्ट उपलब्धि है। कहा जा सकता है कि प्रगतिवादी कवि ने अपनी कविताओं में देश-प्रेम को एक नया सारगर्भित अर्थ प्रदान किया है।

प्रगतिवादी कविता में कल्पना की उड़ान न होकर यथार्थ जीवन का ठोस चित्रण किया गया है। यह यथार्थ भी सामान्य न होकर एक विशिष्ट प्रकार का सामाजिक यथार्थ है। जीवन से संपृक्त होने के कारण प्रगतिवादी कवि अधिक जीवन्त हैं। वह ग्राम, प्रकृति, नगर, राष्ट्र और अंत में विश्व के प्रति अपनी यथार्थ कल्याणकारी दृष्टि रखता है। समाज के सुंदर और असुंदर पक्षों का विश्लेषण करता है उन्हें काव्य में प्रस्तुत करके नई चेतना का प्रसार करता है। संवेदना का यह प्रसार मुक्तिबोध ने इस प्रकार व्यक्त किया है-

'मुझे भ्रम होता है, कि प्रत्येक पत्थर में चमकता हीरा है,
हर एक छाती में आत्मा अधीरा है,
प्रत्येक सुस्मित में विमल सदानीरा है,
मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी में, महाकाव्य-पीड़ा है,
पल-भर में मैं सबसे गुजरना चाहता हूँ...'[5]।

प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृति पर भी नवीन ढंग से विचार किया है। प्रगतिवादी कवि कल्पना के उपकरणों इन्द्रधनुषी आकाश, चाँद, सितारों और नक्षत्रों की दुनिया में नहीं भटकता, वह अपने गाँव या नगर के आस-पास फैले हुए चिर-परिचित प्राकृतिक सौन्दर्य और उसके माध्यम से सामाजिक जीवन के हर्ष-विषाद को चित्रित करता है। केदारनाथ अग्रवाल ने बोतल के टुकड़ों पर फिसलती-मचलती चाँदनी का बहुत सुंदर वर्णन किया है -

'पीपल के पत्तों पर फिसल रही चाँदनी
नालियों के भींगे हुए पट पर पास ही जम रही,
धुल रही, पिघल रही चाँदनी
पिछवाड़े बोतल के टुकड़ों पर नाच रही,
कूद रही, उछल रही चाँदनी
आँगन की दूबों पर गिर पड़ी,
अब मगर किस कदर संभल रही चाँदनी।'[6]

इस कविता में वर्णित चाँदनी पन्त की चाँदनी से भिन्न है। इसका कथ्य जीवन की स्वीकृति पर आधारित है। यहाँ पीपल के पत्तों पर, नालियों के भीगे पट पर, बोतलों के टुकड़ों पर नाचने, उछलने, कूदने वाली चाँदनी हमारी आँखों को कम सुंदर नहीं लगती। प्रगतिवाद में ग्रामीण प्रकृति के अनेकानेक लुभावने और यथार्थ चित्र त्रिलोचन, रामविलास

शर्मा और नागार्जुन की कविताओं में प्राप्त होते हैं। इन कवियों ने प्रकृति को लोक-जीवन के साथ संबद्ध करके उसके मंगलमय रूपों का ही वर्णन नहीं, बल्कि उसके विनाशकारी रूपों का भी वर्णन नये ढंग से प्रस्तुत किया है। जो बादल कभी प्रेमी-प्रेमिका का संदेश पहुँचाने का माध्यम हुआ करते थे, वही बादल प्रगतिवाद युग में आकर जन-संघर्ष की चेतना को अभिव्यक्त करते हैं। नागार्जुन ने 'बादल को घिरते देखा है' शीर्षक कविता में बादल के संघर्षरत रूप का चित्रण किया है -

'मैंने तो भीषण जाड़ों में, नभ चुम्बी कैलाश शीर्ष पर,
महामेघ को झँझानिल से गरज-गरज भिड़ते देखा है।'[7]

प्रकृति के वे उपकरण, जो परम्परा से सौंदर्य-जनित आकर्षण के प्रतिमान माने जाते रहे हैं, प्रथम बार प्रगतिवादी कविता में सामान्य तथा साधारण के लिए स्थान रिक्त करते हैं। किसी समय विद्युत्, इन्द्रधनुष, चाँदनी, निर्झर, तथा हिममंडित पर्वत-शिखरों में ही सौंदर्य देखनेवाली दृष्टि इस नये युग में पेड़ों के पीले पत्तों, सूखी झाड़ियों, कोयले की खदानों, खेत-खलिहानों में सौंदर्य-राशि खोज लेती है।

प्रगतिवादी सौंदर्य-दृष्टि द्वारा प्रस्तुत चित्रों में कल्पना का वैभव नहीं है, परंतु इनमें वह सादगी तथा ताजापन अवश्य है। डॉ. रामविलास शर्मा जब नागरिक जीवन की कड़वाहट, विषमता तथा श्रमजीवी पर टिकी पूँजीवादी व्यवस्था को 'लहू की बूंदों से जलते है बिजली के बल्ब सूनी सड़कों पर लाल-लाल', या जब वे खेतीहर कृशकाय मजदूरों के तन का यह चित्र प्रस्तुत करते हैं -

'इस धरती पर जो अठवासे श्रम करते हैं,
उनके तन की पर्तों पर अब सूख गया है रक्त,
रेत पर गिरी हुई जल की बूंदों सा।'[8]

तो जैसे उनकी बात सीधे मर्म तक पहुँच जाती है। नागार्जुन, केदारनाथ तथा त्रिलोचन की ऐसी अनेक कविताएँ हैं, जिनमें जन-जीवन की व्यथा को मूर्त करने वाले चित्र सहज ही प्राप्त हो जाते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा की भाँति रांगेय राघव तिमिर का बोझ ढोती हुई रात को कोयले की खान की मजदूरनी के रूप में सामने लाते हैं, तो वातावरण की सजीवता के साथ-साथ उनकी कल्पना का नयापन भी प्रत्यक्ष हो जाता है।

नागार्जुन की धूप कविता निम्न मध्यवर्ग के लोगों के जीवन पर रोशनी डालती है। धूप का काम अंधेरे को मिटाकर प्रकाश देना है। प्रस्तुत पंक्तियों में कविने वर्ग भेद का यथार्थ अंकन किया है -

पूस मास की धूप सुहावन
घिसे हुए पीतल-सी पांडुर
पूस मास की धूप सुहावन
स्तनपायी नीरोग गौर छवि

शिशु के गालों जैसी मनहर
पूसमास की धूप सुहावन
फटी दरी पर बैठा है चिर-रोगी बेटा
राशन के चावल से कंकड़बीन रही पत्नी बेचारी'[9]

फटी दरी ही निम्न मध्यवर्ग की सारी परिस्थिति बयां कर देती है। अर्थाभाव के कारण रोगी बेटे का ईलाज भी नहीं हो पाया है।

प्रगतिवादी कवि कल्पनात्मक रूप सौंदर्य 'नील परिधान बीच गुलाबी रंग' पर नहीं, मानवीय रूप सौंदर्य के प्रति अधिक आकृष्ट हुआ है। इन कवियों के लिए काल्पनिक दुनिया की अपेक्षा धूल-धक्कड़ की दुनिया, धूप-छाँव की दुनिया अधिक खूबसूरत हो गई हैं। कोमल अंगों की नायिका का स्थान प्रगतिवाद में आकर तोड़ती पत्थर की नायिका ले लेती है। प्रगतिवादी कवियों ने नारी सौंदर्य के चित्र भी प्रस्तुत किए है पर युग के यथार्थ में ही। यही है प्रगतिवादी कविता का सौन्दर्य जो हमारे संवेदन विश्व को दीन-हीन, पीड़ित, सर्वहारा वर्ग के प्रति हमें जोड़ता हैं। इतना ही नहीं प्रगतिवादी कविता में वास्तविक जीवन की सच्चाई का अंकन हुआ है, जो हमें महलों में ही नहीं झोपड़ियों में रहने वाले जन-जन में सौन्दर्य देखने को बाध्य करता है। सन् 1936 में लखनऊ में 'प्रगतिशील लेखक संघ' के अध्यक्षीय वक्तव्य देते हुए प्रेमचन्द्र ने कहा था कि 'अब सौन्दर्य केवल सुंदर स्त्री के लिपिस्टिक लगे होठों में ही नहीं देखना होगा अपितु अपने बच्चे को खेत के मेड़ पर सुलाकर काम करने वाली युवती के पपड़ी पडे होठों में भी सौन्दर्य देखना होगा'[10] यही है लोक-सौन्दर्य को शास्त्र में बाँधने वाला-प्रगतिवादी सौन्दर्यशास्त्र।

सन्दर्भ सूची

1. प्रगतिवादी शिवकुमार मिश्र पृ. 38
2. वहीं, पृ. 42 से उद्धृत
3. वहीं, पृ. 39 से उद्धृत
4. आधुनिक हिन्दी काव्य, डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ-494 से उद्धृत
5. गजानन माधव मुक्तिबोध व्यक्तित्व एवं कृतित्व, जनक शर्मा, पृ.55
6. कविता और मानवीय संवेदना, डॉ. रेवतीरमण, पृ.32
7. आधुनिक हिन्दी काव्य, डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ.483
8. प्रगतिवाद, शिवकुमार मिश्र पृ.65
9. आधुनिक हिन्दी काव्य, डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ.480
10. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ. 405

❖❖